International Journal of Applied Research 2019; 5(1): 602-607

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(1): 602-607
www.allresearchjournal.com
Received: 09-01-2019
Accepted: 12-02-2019

डॉ. मुकेश वसावा
तुलनात्मक साहित्य विभाग,
वीर नर्मद दक्षिण गुजरात
युनिवर्सिटी, सूरत, गुजरात, भारत

Corresponding Author:
डॉ. मुकेश वसावा
तुलनात्मक साहित्य विभाग,
वीर नर्मद दक्षिण गुजरात
युनिवर्सिटी, सूरत, गुजरात, भारत

मध्यकालीन भारतीय भक्ति आंदोलन और संत परंपरा

डॉ. मुकेश वसावा

प्रस्तावना

मध्यकालीन भारतीय भक्ति आंदोलन:

मध्यकाल का भक्ति आन्दोलन सबसे पहले दक्षिण भारत से ही आलवारों एवं नायनारों से शरू हुआ जो कालान्तर में उत्तर भारत सहित सम्पूर्ण दक्षिण एशिया में फैल गया. दक्षिण में आलवारों की भक्ति बहुत प्रसिद्ध है. आलवार तमिल कवि एवं सन्त थे. इनका काल ६ठी से ९वीं शताब्दी के बीच रहा. उनके पदों का संग्रह 'दिव्य प्रबन्ध' कहलाता है जो 'वेदो' के तुल्य माना जाता है. आलवार सन्त भक्ति आन्दोलन के जन्मदाता माने जाते हैं. विष्णु या नारायण की उपासना करनेवाले भक्त 'आलवार" कहलाते हैं. इनकी संख्या १२ हैं. इन बारह आलवारों ने घोषणा की कि भगवान की भक्ति करने का सबको समान रूप से अधिकार प्राप्त है. इन्होंने, जिनमें कतिपय निम्न जाति के भी थे, समस्त तमिल प्रदेश में पदयात्रा कर भक्ति का प्रचार किया. 'आलवार' शब्द का अर्थ है ईश्वरीय ज्ञान के मूल तत्व तक पहुँचा हुआ ज्ञानी व्यक्ति. इसी तरह हिन्दू धर्म में नायनार भगवान शिव के भक्त सन्त थे. इनका उद्भव मध्यकाल में मुख्यत: दक्षिण भारत के तमिलनाडु में हुआ था. कुल ६३ नयनारों ने शैव सिद्धान्तो के प्रचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई.

'भक्ति द्राविड उपजी लाये रामानंद
प्रगट करी कबीर ने सप्तद्वीप नवखंड'

लोक प्रसद्धि इस उक्ति का सन्दर्भ सभी इतिहासकारों ने कई सन्दर्भो में सही माना है. इतिहासकार सतीश चन्द्र लिखते है: 'उत्तर भारत में १४वी-१५वीं सदियों में जो जनवादी भक्ति आन्दोलन शुरू हुआ, उसे अक्सर दक्षिणी आन्दोलन की ही एक प्रशाखा माना गया.' आचार्य शुक्ल भी भक्ति आन्दोलन को दक्षिण से ही आने वाली एक धारा मानते है. मुक्तिबोध भी भक्ति आंदोलन को दक्षिण से आया मानते है.

वे कहते है: 'समाज की धर्मशास्त्रवादी वेद-उपनिषवादी शक्तियों ने उसे प्रस्तुत नहीं किया, वरन् आलवार संतों ने और उसके प्रभाव में रहनेवाले जनसाधारण ने उसका प्रसार किया.'

भक्ति आंदोलन उद्भव के बारे में विद्वानो में विभिन्न मत है. ऊन में से कुछ एक का यहा उल्लेख करना आवश्यक होगा:

बालकृष्ण भट्ट भक्तिकाल की उपयोगिता अनुपयोगिता का प्रश्न मुस्लिम चुनौती का सामना करने से सीघे सीधे जोड़ते है. इस दृष्टिकोण के कारण भट्ट जी ने मध्यकाल के भक्त कवियों का काफी कठोरता से विरोध किया और उन्हें हिन्दुओं को कमजोर करने का जिम्मेदार भी ठहराया. भक्त कवियों की कविताओं के आधार पर उनके मूल्यांकन के बजाय उनके राजनीतिक सन्दर्भो के आधार पर मूल्यांकन का तरीका अपनाया गया. भट्ट जी ने मीराबाई व सूरदास जैसे महान कवियों पर हिन्दू जाति के पौरूष पराक्रम को कमजोर करने का आरोप मढ दिया. उनके मुताबिक समूचा भक्तिकाल मुस्लिम चुनौती के समक्ष हिन्दुओं में मुल्की जोश जगाने में नाकाम रहा. भक्त कवियों के गाये भजनों ने हिन्दुओं के पौरूष और बल को खत्म कर दिया. रामचन्द्र शुक्लजी ने भक्ति को पराजित, असफल एवं निराश मनोवृत्ति की देन माना था. अनेक अन्य विद्वानों ने इस मत का समर्थन किया था. मुसलमानों के बढते हुई आंतक ने हिन्दुओं के ह्रदय में भय की भावना उत्पन्न कर दी थी इस असहायावस्था में उनके पास ईश्वर से प्रार्थना करने के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं था.

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदीने सर्वप्रथम इस मत का खंडन किया तथा प्राचीनकाल से इस भक्ति प्रवाह का सम्बन्ध स्थापित करते हुई अपने मत को स्पष्टत: प्रतिपादित किया. उन्होंने लिखा: 'यह बात अत्यन्त उपहासास्पद है कि जब मुसलमान लोग उत्तर भारत के मन्दिर तोड रहे थे तो उसी समय अपेक्षाकृत निरापद दक्षिण में भक्त लोगों ने भगवान की शरणागति की प्रार्थना की. मुसलमानों के अत्याचार से यदि भक्ति की धारा को उमडना था तो पहले उसे सिन्ध में फिर उसे उत्तर भारत में प्रकट होना चाहिए था, पर हुई वह दक्षिण में'.

उपर्युक्त मतो के विवाद में न पडकर हम डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा के शब्दों में यह कह सकते है: 'भक्ति-आंदोलन पर इस्लामी विजय के प्रभावों को लेकर यद्यपि मतभेद और विवाद रहा है, तथापि हमारी सम्मति में इस बात से इन्कार मुश्किल है कि बारहवीं सदी के अंतिम दशकों में तुर्को द्वारा भारत-विजय और इस्लाम के आगमन ने ईसी प्रभावकारी शक्तियों को बढावा दिया जिससे परवर्ती सदियों में लोकप्रिय आंदोलन के रूप में भक्ति के विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ.'

भक्ति साहित्य उद्भव और उसके विकास के बारे में मुक्तिबोधजी का कहना है: 'ग्यारहवी सदीं में महाराष्ट्र की गरीब जनता में भक्ति आंदोलन का प्रभाव अत्यधिक हुआ. राजनैतिक दृष्टि से, यह जनता हिन्दु-मुस्लिम दोनों प्रकार के सामन्ती उच्चवर्गीयों से पीडित रही. संतो की व्यापक मानवतावादी वाणी ने उन्हें बल दिया. . . रस-संचार किया. . . ज्ञानेश्वर, तुकाराम आदि संतो ने गरीब किसान और अन्य जनता का मार्ग प्रशस्त किया...' मुक्तिबोध भक्ति आंदोलन को मार्क्सवादी विचारधारा से देखते है; उच्चवर्गीयों और निम्नवर्गीयों का संघर्ष बहुत पुराना है. यह संघर्ष नि:सन्देह धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक क्षेत्र में अनेकों रूपों में प्रकट हुआ. सिद्धों और नाथ-संप्रदाय के लोगो ने जनसाधारण में अपना पर्याप्त प्रभाव रखा, किन्तु भक्ति-आंदोलन का जनसाधारण पर जितना व्यापक प्रभाव हुआ उतना किसी अन्य आंदोलन का नहीं. पहली बार शूद्रों ने अपने संत पैदा किये, अपना साहित्य और अपने गीत सृजित किई. कबीर, रैदास, नाथा सिंपी, सेना नाई, आदि-आदि महापुरूषों ने ईश्वर के नाम पर जातिवाद के विरूद्ध आवाज बुलंद की.

भक्ति आंदोलनन के कारण:

भक्तिकाल के उद्भव के कुछ कारण इस प्रकार बता ये जा सकते है. पहला; वस्तुत: भक्ति आंदोलन के उदय का संबंध उस युग की परिस्थितियों में निहित है. बारहवीं सदी के बाद भारत में तेजी से व्यापार और शिल्प का विकास

हुआ. डॉ. रामविलास शर्मा ने इसे व्यापारिक पूंजीवाद की संज्ञा दी है और इस विकास का संबंध भक्ति आंदोलन से जोडा है. दुसरा यह है कि मुस्लिम शासकों के आने से हिंदू सामंतशाही कुछ हद तक कमजोर अवश्य हुई. इसने भारत में वर्णधमीय सामंती समाज व्यवस्था के दो महत्वपूर्ण आधारों सामंत और पुरोहित की शक्ति को कमजोर किया. तीसरा कारण यह है कि इस दौर में नगरों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि कर दी. अकबर के जमाने में ३२०० कस्बे थे. चूंकि नया शासक वर्ग बुनियादी तौर पर नगर निवासी था इसलिए उसने उपलब्ध साधनों को अधिकतर शहरों में ही व्यय किया. श्रमिक वर्गीय नगरों के उदय और मुस्लिम शासकों द्वारा बाहरी विश्व से पुन: संबंध स्थापन से व्यापार को नई प्रेरणा मिली. चौथे, इस आर्थिक सक्रियता के पीछे इस काल में होने वाला तकनीकी विकास भी था. इसने शिल्प तथा कृषि उत्पादन को बढाया और व्यापारिक गतिविधियों को तेज किया. इससे वर्गो में परिवर्तन आना आवश्यक था. इसी एतिहासिक पृष्ठभूमि, जिसने समाज के कट्टर रूढिवादी तत्वों को छोडकर पूरे समाज में विशेष रूप से उसके निचले कहे जाने वाले हिस्से में अभूतपूर्व वैचारिक, धार्मिक एवं सामाजिक परिवर्तन की मानसिकता निर्मित की, भक्ति को लोकप्रिय आंदोलन का रूप प्रदान किया.

मध्यकाल में भक्ति आन्दोलन और सूफी आन्दोलन अपने महत्वपूर्ण पडाव पर पहुँच गई थे. इस काल में भक्ति आन्दोलन के सूत्रपात्र एवं प्रचार प्रसार के महत्वपूर्ण कारण निम्नलिखित भी बताये जा सकते है: (१) मुस्लिम शासकों के बर्बर शासन से कुंठित एवं उनके अत्याचारों से त्रस्त हिन्दू जनता ने ईश्वर की शरण में अपने को अधिक सुरक्षित महसूस कर भक्ति मार्ग का सहारा लिया. (२) सूफी-सन्तों की उदार एवं सहिष्णुता की भावना तथा ईकेश्वरवाद में उनकी प्रबल निष्ठा ने हिन्दुओं को प्रभावित किया; जिस कारण से हिन्दु, इस्लाम के सिद्धान्तों के निकट सम्पर्क में आये. इन सबका प्रभाव भक्ति आन्दोलन पर बहुत गहरा पडा. (३) हिन्दुओं ने सूफियों की तरह ईकेश्वरवाद में विश्वास करते हुई ऊँच-नीच एवं जात-पात का विरोध किया. (४) इसमें समाज के सभी वर्गो यानी की निम्न जातियाँ, उच्च जातियाँ, स्त्री-पुरूष, सनातनी, सिख, मुसलमान आदि का प्रतिनिधित्व रहा.

संत परंपरा और स्वरूप:

'संत' हिन्दी आलोचना का पारिभाषिक शब्द है. हिन्दी-आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली में निर्गुण-भक्तो को संत कहा जाता है. सामान्य रूप से संत और भक्त ईकार्थक शब्द हैं किन्तु हिन्द आलोचना में ये भिन्न अर्थो में प्रयुक्त होते है. साहित्य क्षेत्र में प्रयोग की दृष्टि से ही नहीं, अर्थ-मयार्दा के विचार से भी यह शब्द अत्यन्त महत्वपूर्ण है. सगुण-निर्गुण भक्ति साहित्य के विशाल वाड्मय में संत शब्द सदसद् विवेकशील, अराग, अलेप और मायातीत महापुरूष के अर्थ में निरूपवाद रूप से व्यक्त हुआ है. स्त विचारों और आचारों से बद्ध व्यक्ति को 'संत' की संज्ञा दी गई है.

मराठी में भक्त और सन्त के बीच कोई सीमा रेखा नही. जो आत्मोन्नति सहित परमात्मा के मिलन को साध्य मानकर लोक मंगल की कामना करता है उसे हम 'संत" की श्रेणी में रखते है. गुजराती के संत श्रेष्ठ कवि अखा के अनुसार संत वह है जो अनुभव सिद्ध ज्ञानी है. जो निर्गुण और सगुण का भेद छोडकर भक्ति एवं वैराग्य के पंख लगा कर लोकमंगल के लिए तत्व की खोज में निकल पडता है वही संत है. लोक जीवन में 'संत' शब्द का अर्थ कोई महात्मा अथवा भक्त जन लिया जाता है. 'संत' शब्द की व्युत्पत्ति 'सत्' शब्द से हुई है. जिसका अर्थ होता है 'सत्य'.

भारतीय भाषाओं के साहित्य में यह शब्द अत्यंत प्राचीन काल से प्रयुक्त होता आया है. ऋग्वेद और तैत्तिरीय उपनिषद् में इसका प्रयोग 'एक' एवं अद्वितीय परमतत्व के लिई, एकवचन में, किया गया मिलता है. महाभारत में इसका प्रयोग सदाचारी के अर्थ में हुआ है और संतो को आचारलक्षण कहा गया है. भागवत में यह पवित्रात्मा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और बताया गया है कि संसार को पवित्र करने वाले तीर्थों को भी, संत पवित्र करने वाले होते है. प्रयोगगत बहुलता के हिसाब से संस्कृत साहित्य में

संत शब्द सज्जन का अर्थ देता है. आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं के भक्ति-साहित्य में संत महत्वपूर्ण शब्द है. कबीर के मत से संत वे हैं जिनका कोई दुश्मन नहीं हैं, जो निष्कामवृत्ति वाले हैं, साई से प्रीति करते हैं और विषयों से निर्लिप्त होकर रहते है. सारी दुनिया दुखी है, सुखी अकेला संत है जिसने मन को जीत लिया है. स्पष्ट है कि कबीर ने संत शब्द का प्रयोग उन मायातीत महापुरूषों के अर्थ में किया है जो निर्वैर, निष्काम और निर्विषय होते हैं. करनी की कसौटी पर खरा उतरता है वही सच्चा संत है. संत पर न किसी योनि का एकाधिकार है न किसी देश का, न किसी काल का. संत हर योनि में, हर देश में और हर काल में रहते हैं. समस्त निर्गुण भक्ति-साहित्य में संत शब्द की यही अर्थ-स्थिति है.

संत शब्द को लेकर ईसी अर्थ-स्थिति सगुण-भक्ति के साहित्य में भी है जिसमें गोस्वामी तुलसीदास सर्वाधिक विशद और मौलिक चर्चा करते है. गोस्वामीजी संत शब्द को असज्जन और खल का विपरीतार्थक मानते है. उनका न कोई हित होता है न अनहित. समानचित्त और सरल स्वभाव वाले संत सदा सारी दुनिया का हित सोचते है. उनकी यही बडाई है कि बुरा करने वाले का भी वे भला करते है. 'रामचरित मानस' के विविध प्रसंगो में गोस्वामी तुलसीदास ने कुछ निम्नलिखित लक्षणो वाले लोगो को संत मानने के लिई तैयार नहीं है. उत्तरकाण्ड के 'कलिमहिमा' वाले प्रसंग में गोस्वामी जी ने बताया है कि ये तथाकथित संत तेली, कुम्हार, चाण्डाल, भील, कोल, कलवार आदि अधमवर्णो में उत्पन्न होने वाले लोग थे जो पुराण और वेद की प्रामाणिकता में अविश्वास करते थे, ब्राह्मण के प्रति जिनमें कोई श्रद्धा नहीं थी, जो अनेक जप-तप और व्रतों का अनुष्ठान करते थे, व्यास गद्दी पर बैठकर धर्मोपदेश देते थे, ब्राह्मणों से विवाद करते थे, उनपर अपने ज्ञान का रोब डालकर उन्हें ज्ञान का उपदेश करते थे. . . शिव के प्रति इनमें आस्था थी और पौराणिक देवताओं तथा विष्णु के प्रति द्रोह-भाव था. ये तथाकथित संत सगुण ब्रह्म के निन्दक और निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे. बडी साफ-सी बात है कि कबीर आदि के परंपरा के संतो को गोस्वामी तुलसीदास संत नहीं मानते. वर्णाश्रम धर्म और श्रुतिसम्मति को आधार मानने वाले तुलसीदास के उपरोक्त कथन को देखे तो वे ऊचँ-नीच का भेदभाव पूर्ण रवैये से संत की परिभाषा करते दिखते है.

डॉ. राजदेव सिंह अपनी पुस्तक 'संत-साहित्य की भूमिका' में लिखते है: 'हिन्दी आलोचना और अनुसंधान के विकास के साथ-साथ अब स्थिति यहाँ तक पहुँच गई है कि संत शब्द आजकल अपनी पूर्ववर्ती उदात्त अर्थ-मर्यादा से विच्छिन्न होकर ईसे ज्ञानी भक्तों की पारिभाषिक संज्ञा बन गया है जो नीची जातियों में उत्पन्न हुई है, ब्राह्मण, वेद और सगुण ब्रह्म में आस्था नहीं रखते, जाति-पाँति के बन्धनों को अस्वीकार करते हैं और आदि संत कबीर, कबीर के किसी अनुयायी, या कबीर जैसी कथनी-करनी वाले किसी भक्त को अपना गुरू मानने हैं तथा उनके मत, रीति-नीति, आचार-व्यवहार एवं साधना की सीधी परम्परा में पडते है.' तुलसीदास का हो या राजदेव सिंह, दोनो हीं विवरण में अधर्मवर्ण, ब्राह्मण के प्रति अश्रद्धा, सगुण ब्रह्म के निन्दक और निर्गुण ब्रह्म के उपासक, निम्न जाति के, वेद और पुराणो को नहीं मानने वाले लोगो को संत नहीं मानते. दोनो हीं विद्वान पक्षपाती विवेचन करते दिखते है. कबीरदास ब्राह्मण-श्रेष्ठता, रामकथा, सगुणोपासना, वेद-प्रामाण्यआदिकोस्वीकारनहींकरते, बल्कि साफ-साफ अस्वीकार करते हैं जबकि गोस्वामी तुलसीदास इनको, या इन्हीं को, भक्त का सबसे बडा गुण मानते है.

'एक बार भक्ति-आंदोलन में ब्राह्मणों का प्रभाव जम जाने पर वर्णाश्रम धर्म की पुनर्विजय की घोषणा में कोई देर नहीं थी. ये घोषणा तुलसीदासजी ने की थी. निर्गुण मत में निम्मजातीय धार्मिक जनवाद का पूरा जोर था, उसका क्रान्तिकारी सन्देश था. कृष्णभक्ति में वह विल्कुल कम हो गया किन्तु फिर भी निम्नजातीय प्रभाव अभी भी पर्याप्त था. तुलसीदास ने भी निम्नजातीय भक्ति स्वीकार की, किन्तु उसको अपना सामाजिक दायरा बतला दिया. निर्गुण मतवाद के जनोन्मुख रूप और उसकी क्रान्तिकारी जातिवाद-विरोधी, भूमिका के विरूद्ध तुलसीदासजी ने

पुराण-मतवादी स्वरूप प्रस्तुत किया. निर्गुण-मतवादियों का ईश्वर एक था, किन्तु अब तुलसीदासजी ने मनोजगत् में परब्रह्म के निर्गुण-स्वरूप के बाबजूद सगुण ईश्वर ने सारा समाज और उसकी व्यवस्था-जो जातिवाद, वर्णाश्रम धर्म पर आधारित थी-उत्पन्न की. राम निषाद और गुह का आलिंगन कर सकते थे, किन्तु निषाद और गुह ब्राह्मण का अपमान कैसे कर सकते थे. दार्शनिक क्षेत्र का निर्गुण मत जब व्यावहारिक रूप से ज्ञानमार्गीबना, तो उसमें पुराण-मतवाद को स्थान नहीं था. कृष्णभक्ति के द्वारा पौराणिक कथाईं घुसीं, पुराणों ने रामभक्ति के रूप में आगे चलकर वर्णाश्रम धर्म की पुनर्विजय की घोषणा की.'

मुक्तिबोध जी को यहाँ याद कर लेते है. वे कहते है: 'अपने कट्टरपन्थी पुराणमतवादी संस्कारों से प्रेरित होकर, उत्तर भारत की कृष्णभक्ति, भावावेशवादी आत्मवाद को लिये हुई, निर्गुण मत के विरूद्ध संघर्ष करने लगी. इन सगुण मत में उच्चवर्गीय तत्वों का पर्याप्त से अधिक समावेश था. किन्तु फिर भी इस सगुण श्रृंगारप्रधान भक्ति की इतनी हिम्मत नहीं थी कि वह जाति-विरोधी सुधारवादी वाणी के विरूद्ध प्रत्यक्ष और प्रकट रूप से वर्णाश्रम धर्म के सार्वभौम औचित्य की घोषणा करे. कृष्णभक्तिवादी सूर आदि संत कवि इन्हीं वर्गो से आये थे. इन कवियों ने भ्रमरगीतों द्वारा निर्गुण मत से संघर्प किया और सगुणवाद की प्रस्थापना की. वर्णाश्रम धर्म की पुन:स्थापना के लिई सिर्फ एक ही कदम आगे बढना जरूरी था. तुलसीदासजी के अदम्य व्यक्तित्व ने इस कार्य के पूरा कर दिया. इस प्रकार भक्ति-आंदोलन, जिस पर प्रारंभ में निम्नजातियों का सर्वाधिक जोर था, उस पर अब ब्राह्मणवाद पूरी तरह छा गया और सुधारवाद के विरूद्ध पुराण मतवाद की विजय हुई.' किस तरह निर्गुण मत पे सगुणवाद हावी होता गया यह हम देख सकते है. वास्तव में सच्चा संत किसी सम्प्रदाय विशेष का अनुयायी होने से संत नहीं कहलाता. वह चाहे सगुण उपासना करता हो चाहे निर्गुण, क्यों कि संत इन दोनों से ऊपर उठकर उस वास्तविकता की अर्थात परमतत्व की प्राप्ति के लिए प्रयास करता है.

निर्गुण संत काव्यधारा पर विभिन्न मत मंतांतरो का प्रभाव रहा है. निर्गुण संत मत पर पडने वाले विभिन्न दार्शनिक और धार्मिक मतों का विवेचन आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'कबीर' नामक अपनी पुस्तक में किया है. निर्गुण मार्गी संत कवियों पर बौद्धमत, नाथपंथ, इस्लाम के सूफी मत तथा शंकर और रामानुज के अद्वैत और विशिष्टाद्वैत के सिद्धांत का असर रहा है. निर्गुण संत कवि ईश्वर को निर्गुण, निराकार, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान और नित्य मानते हैं. ईश्वर सर्वव्यापक होने से चराचर जगत में व्याप्त रहता है. और उसकी भक्ति के लिई किसी बाह्य आधार की आवश्यकता नहीं होती. यानी कि मूर्ति पूजा या मंदिर-मस्जिद में जाकर उपासना करने की कोई आवश्यकता नहीं. ईश्वर सर्वशक्तिमान है इसलिए उसकी बाह्य कर्मकांड से पूजा-अर्चना करना निरर्थक है. निर्गुण मत में शास्त्रो के वचनों और धार्मिक विधि-निषेधों के प्रति भी उपेक्षा का भाव है. यह वस्तुत: नाथ पंथ का प्रभाव है.

निचली जातियों पर इन संतों ने जो उपकार किई उनको निचली जातियां तो कभी भुला ही नहीं सकतीं. समाज के निचले घरातल से उठकर उन्हों ने यह बता दिया कि अपनी अनवरत तपस्या और साधना से वे उच्चजातियों से कहीं आगे बढ सकते हैं. निम्नजातियों को उन्होंने उच्चवर्ण की जातियों के अत्याचारों से रोका. इतना ही नहीं बल्कि उन्हें इस्लाम की ओर प्रवृत्ति होने से बचा लिया. इन्हीं निम्नजातियों को इन संतों ने भारत के महान सांस्कृतिक गौरव का परिचय इसी रूप में करवाया. नीति के ऊँचे-से-ऊँचे आदर्शो का पालन उन्होने स्वयं पूर्ण कर उसका आदर्श लोगों के समक्ष रखा. संतो ने हिन्दु मुसलमान दोनों को अपने वैमनस्य को छोडकर स्हेन सम्बन्धों को प्रतिष्ठित करने की सीख दि. उन्हों ने मनुष्यता की वाणी में राम रहीम का भेद नहीं रखा.

इस प्रकार जहा निर्गुण संतो ने मानवतावाद की स्थापना पे जोर दिया वहा सर्गुण भक्तो ने ईश्वरवाद की स्थापना पे. भारतीय मध्यकालीन संस्कृति की एकता को बनाई रखने का कार्य इन संत कवियों ने किया. इनकी विचारधारा किसी विशिष्ट जाति, वर्ग, सम्प्रदाय, हिन्दु या

मुसलमानों के लिई न होकर भारतीयों के लिए थी. उन्होंने लोगों को हिन्दु और मुसलमानों के रूप में नहीं बल्कि एक मनुष्य के रूप में देखा. कबीर, दादू, नानाक, तुकाराम, नामदेव, ज्ञानदेव ने जो भी कहा वह लोगों के दिल की सच्ची आवाज थी. इसे न तो कट्टत ब्राह्मण ही खंडन कर सकते है और न ही कट्टर मुसलमान. निस्संदेह भारतीय संतो ने मध्ययुग में भारतीय संस्कृति के अभ्युत्थान में अमूल्य योगदान दिया है.

संदर्भग्रंथ सूचि

1. सगरे, (डॉ.) भरत (संपा.): हिंदी और मराठी संत साहित्य की समाज प्रबोधन में भूमिका, तन्वी प्रकाशन, सातारा, २०१७.
2. मुकितबोध: मध्ययुगीन भक्ति आंदोलन का एक पहलू (आलेख) नई दिशा, १९५५.
3. आचार्य शुक्ल, रामचन्द्र: हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी.
4. मोहिदेकर, अर्चना: सन्तकवयित्रियाँ, श्री। श्रीरंग मच्छे, पारिजातनगर, नाशिक, २००८.
5. प्रेमशंकर: भक्तिकाव्य का समाजदर्शन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २०००.
6. शर्मा, (डॉ.) लक्ष्मीनारायण: भक्ति काव्य के सामाजिक आयाम, हंस प्रकाशन, जयपुर, २००८.
7. वंशी, बलदेव: भारतीय नारी संत परंपरा, वाणी प्रकाशन, २०११.
8. व्यास, (डॉ.) भोलाशंकर: भारतीय साहित्य की रूपरेखा, वाराणसी, १९६३.
9. सिंह, राजदेव, (डॉ.) संत साहित्य की भूमिका, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, प्रथम संस्कार, १९७४.
10. जानी, (डॉ.) मदनकुमार: राजस्थान एवं गुजरात के मध्यकाली संत एवं भक्त कवि, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, १९७१.